एक पृथ्वी, एक स्वास्थ्य के लिए योग की अवधारणा

प्रदीप कुमार मिश्रा*, अमितेश कुमार, प्रो. कुलदीप कुमार पाण्डेय****

भूमिका: "एक पृथ्वी, एक स्वास्थ्य के लिए योग" (Yoga for One Earth, One Health) वर्तमान युग की एक अत्यंत प्रासंगिक वैश्विक अवधारणा है, जो मानव, पशु, वनस्पति और पारिस्थितिक तंत्र की एकात्मकता की बात करती है। यह दृष्टिकोण केवल आधुनिक विज्ञान की देन नहीं है, बल्कि इसका मूल वैदिक ऋषियों के चिंतन में बहुत गहराई से निहित है। ऋषियों ने सहस्त्रों वर्ष पूर्व ही इस सृष्टि की परस्पर संबद्धता, जैविक संतुलन और स्वास्थ्य की समग्र दृष्टि को प्रस्तुत किया जो कि शाश्वत है क्योंकि सार्वभौमिक सत्य सभी के लिए एकसमान रूप से सभी जीव वर्गों के लिए हमेशा एक ही होता है जैसे - प्रातः सूर्योदय से पूर्व प्राणवायु शुद्ध होती है तो यह सार्वभौमिक सत्य है। ठीक इसीप्रकार से योग साधना सभी के स्वास्थ्य के लिए सार्वजनीन एवं सार्वभौमिक है। एक पृथ्वी, एक स्वास्थ्य एक समग्र दृष्टिकोण (holistic approach) है, जो यह मानता है कि मानव स्वास्थ्य, पशु स्वास्थ्य, और पर्यावरणीय स्वास्थ्य एक-दूसरे से गहराई से जुड़े हुए हैं। यह विचार केवल चिकित्सकीय व्यवस्था तक सीमित न होकर, समाज, पारिस्थितिकी और नीति-निर्माण को भी प्रभावित करता है।

पृथ्वी का स्थान – ऋग्वेद, यजुर्वेद, अथर्ववेद आदि ग्रंथों में "पृथ्वी माता" की संज्ञा दी गई है। पृथ्वी को जीवित, संवेदनशील और पोषण देने वाली माता माना गया है। भूमि हमारी माता है और हम उसके पुत्र हैं।[1]

अतः इससे स्पष्ट है कि मानव मात्र पृथ्वी से अलग नहीं है बल्कि हमारा अस्तित्व और स्वास्थ्य पृथ्वी की स्थिति और संतुलन से जुड़ा हुआ है।

स्वास्थ्य का दृष्टिकोण समग्र स्वास्थ्य –

हमारी सनातन परंपरा में स्वास्थ्य केवल शरीर का न रहकर मन, आत्मा और पर्यावरण का संतुलन है यह ही एक पृथ्वी का द्योतक है। अतः स्वास्थ्य के संदर्भ में कहा गया है:

वह स्थिति है जहाँ शरीर के दोष (वात, पित्त, कफ), अग्नि (जठराग्नि सहित १३ प्रकार की अग्नियाँ) सम हों, धातु, मल संतुलित हो तथा मन सहित आत्मा व इन्द्रियाँ प्रसन्न हों।[2]

इस दृष्टिकोण से व्यक्ति व पर्यावरण का अभिन्न संबंध स्वीकार किया गया है जिससे स्पष्ट है कि 'एक पृथ्वी एक स्वास्थ्य' की परिकल्पना योगमय जीवन के द्वारा ही संभव है क्योंकि योग समष्टि को समाहित करने की विधा है अर्थात् यथा पिण्डे तथा ब्रम्हाण्डे।

---

* शोध छात्र, संज्ञाहरण विभाग, आयुर्वेद संकाय, चिकित्सा विज्ञान संस्थान, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय वाराणसी।

** प्रोफ़ेसर एवं विभागाध्यक्ष, संज्ञाहरण विभाग, आयुर्वेद संकाय, चिकित्सा विज्ञान संस्थान, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय वाराणसी,
ई-मेल- pradeepmishra@bhu.ac.in

[1] माताभूमिःपुत्रोऽहंपृथिव्याः। —अथर्ववेद १२.०१.१२

[2] समदोषःसमाग्निश्चसमधातुमलक्रियः।
प्रसन्नात्मेन्द्रियमनाःस्वस्थइत्यभिधीयते॥ — चरक संहिता

वनस्पति, पशु व प्रकृति के साथ सह-अस्तित्व –

वेदों में यज्ञों, वनों, नदियों और पशुओं की पूजा का उल्लेख है, जो इस बात का प्रमाण है कि प्राचीन भारतीय दृष्टिकोण में प्रकृति के प्रत्येक घटक के साथ सह-अस्तित्व को महत्त्व दिया गया।

हमें वृक्षों का जीवन-विज्ञान सीखना चाहिए।[1]

गायें हमारी माताएं हैं।[2]

अतः इससे स्पष्ट है कि वनस्पति व प्राणी स्वास्थ्य को महर्षियों ने मानव स्वास्थ्य से पृथक नहीं माना।

"ऋत" ब्रह्मांडीय व्यवस्था का सिद्धांत –

वैदिक विचारधारा में 'ऋत' (ऋतम्) का अर्थ है ब्रह्मांड की सार्वभौमिक व्यवस्था। ऋत ही समग्र ब्रह्मांड के संतुलन का आधार है। जब मानव 'ऋत' के अनुसार आचरण करता है, तभी पृथ्वी पर संतुलन और स्वास्थ्य बना रहता है।

ऋत ही पृथ्वी का आधार है।[3]

इस ऋत के विरुद्ध कार्य करने पर विकृति आती है, जिसका प्रभाव केवल मानव पर नहीं, संपूर्ण पारिस्थितिकी पर पड़ता है।अतः योगमय जीवन ही ऋत है जो प्रकृति के नियमों का अनुपालन करता है।

चित्त-विज्ञान और मानसिक स्वास्थ्य –

मानसिक स्वास्थ्य यौगिक चिंतन का मूल है। उपनिषदों में चित्त की शुद्धि और नियंत्रण को अत्यधिक महत्व दिया गया है। चित्त विकारों (धृति, स्मृति, विवेक की भ्रांति) से संपूर्ण स्वास्थ्य प्रभावित होता है। व्यक्ति जब सभी जीवों के प्रति मैत्री, करुणा, और सह-अस्तित्व का भाव रखता है, तब चित्त शुद्ध होता है — यही "एक पृथ्वी, एक स्वास्थ्य" का सार है।[4]

मन का संतुलन स्वयं और समाज दोनों के लिए स्वास्थ्य का आधार है।[5] योग में आसन, प्राणायाम, ध्यान, इसके प्रभावशाली साधन हैं। इन सभी के मूल को ही ठीक कर लिया जाय तो मानस पटल अपने आप ही परिशुद्ध हो जायेगा और आधि- व्याधि से परे की स्थिति प्राप्त की जा सकती है क्योंकि –**धी** — बुद्धि (विवेक ज्ञान), **धृति** — धारणा शक्ति, **स्मृति** — स्मरण शक्ति, **विभ्रंशः** — भ्रष्ट होना, विकृति, **सम्प्राप्तिकालकर्मणाम्** — रोग उत्पत्ति के काल, क्रिया व प्रक्रिया का दोष, **असात्म्य अर्थागमः** — इन्द्रियों का असात्म्य अर्थात् अनुचित विषयों के साथ संपर्क(संयोग) होना। **दुःख हेतवः** — रोग/कष्ट के कारण अर्थात् प्रज्ञापराध — बुद्धि, संयम और स्मृति का भ्रंश होना। व्यक्ति सही निर्णय लेने में असमर्थ हो जाता है और अनुचित आहार-विहार करता है। सम्प्राप्तिकाल कर्म — रोग उत्पत्ति का काल, दोषों की गति,

[1] वृक्षायुर्वेदं शिक्षेयम्। —अथर्ववेद

[2] "गावो मे मातरः।" —यजुर्वेद

[3] ऋतेनपृथिवीस्थिता।

[4] "मैत्री करुणा मुदितोपेक्षाणां सुखदुःखपुण्यापुण्यविषयाणां भावनातः चित्तप्रसादनम्।" **पतंजलि योगसूत्र (1.33)**

[5] मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः। — योग वाशिष्ठ

क्रिया आदि। जैसे— ऋतु दोष, काल दोष आदि।

कर्मणाम् — दोष, धातु और मल की क्रिया में विकृति उत्पन्न होना। आयुर्वेद में 'कर्म' का तात्पर्य शारीरिक प्रक्रियाओं से भी होता है।

असात्म्य अर्थागम — इन्द्रियों का असात्म्य विषयों से संपर्क करना। जैसे — बहुत तेज़ प्रकाश में देखना, ऊँची आवाज़ में सुनना, कड़वे/अति गरम भोजन अर्थात् जो पदार्थ शरीर एवं इन्द्रियों के लिए असात्म्य (अनुचित) हो, उसका सेवन दुःख/रोग का कारन बनता है। इन सभी हेतु कारणों के हेतु से योग की साधना की आवश्यकता है जो प्रज्ञापराध जैसी स्थिति ही नहीं होने देगा और दुःख/रोग से बचा जा सकेगा तथा एक पृथ्वी एक स्वास्थ्य की स्थिति प्राप्त हो सकेगी।[1]

अतः इस प्रकार से पूर्ण एक पृथ्वी एवं स्वास्थ्य की स्थिति योग के द्वारा ही संभव है क्योंकि योग सूत्र के द्वितीय सूत्र के माध्यम से महर्षि पतंजलि कहते हैं –

चित्त की वृत्तियों का निरोध ही योग है।[2]

अतः इसी सन्दर्भ में कहा गया है-

इन्द्रियों की स्थिरता को ही योग कहते हैं।[3]

पंचमहाभूत और जैविक संतुलन - शरीर व प्रकृति दोनों ही पंचमहाभूतों (आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी) से बने हैं। इन तत्वों के असंतुलन से ही रोग उत्पन्न होते हैं। यौगिक जीवन शैली इन्हें संतुलित करने का मार्ग है।

उदाहरणतः — वायु प्रदूषण से प्राणवायु की हानि, जल प्रदूषण से जठराग्नि का क्षय आदि होते हैं। अतः पृथ्वी और मानव दोनों के स्वास्थ्य का मूल इन्हीं पंचतत्त्वों का संतुलन है।इन पञ्च तत्वों के संतुलन की स्थिति ही योग है।

आधुनिक अवधारणा "एक पृथ्वी, एक स्वास्थ्य" और योग परम्परा की तुल्यता-

WHO और अन्य अंतरराष्ट्रीय संगठनों द्वारा प्रस्तुत मॉडल स्वास्थ्य को मानव, पशु और पर्यावरण के समन्वय से जोड़ता है। परंतु यह अवधारणा योग परंपरा में पहले से ही निहित है। अंतर है तो केवल शब्दों का।यौगिक, वैदिक "ऋत", "यज्ञ", "अहिंसा", "धर्म", "संयम", "योग" आदि, आधुनिक "Sustainability", "Climate Resilience", "Ecological Harmony" जैसे सिद्धांतों से भी गहरे और व्यापक हैं। यदि व्यक्ति श्रीमद्भगवतगीता वर्णित निष्काम कर्म योग और आहार की अवधारणा को मननशील, विचारशील होकर अपने जीवन में धारण करे तो सर्वांगीण स्वास्थ्य को प्राप्त कर सकता है।[4] "एक पृथ्वी, एक स्वास्थ्य" कोई नवीन अवधारणा नहीं, बल्कि योग परंपरा का ही आधुनिक पुनर्पाठ है। योग का मूल उद्देश्य केवल व्यक्तिगत मोक्ष नहीं, बल्कि सार्वभौमिक कल्याण है। जब योग की दृष्टि से जीवन को देखा

[1] धीधृतिस्मृतिविभ्रंशः सम्प्राप्तिकालकर्मणाम्।
असात्म्यार्थागमश्चेति ज्ञातव्या दुःखहेतवः॥ (च.शा.१/१०२)

[2] योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः॥ - यो.सू. १/२

[3] तां योगमिति मन्यन्ते स्थिरमिन्द्रियधारणाम्। -कठोपनिषद् (2.3.14)

[4] Devarahi, Sadhana & Ji, Manan & Mishra, Pradip Kumar. (2025). स्वास्थ्य संवर्धन में श्रीमद्भगवद्गीता वर्णित आहार और निष्काम कर्म योग की भूमिका. 28. 113-119.

जाता है, तब व्यक्ति और प्रकृति का संतुलन स्वयं बनता है। अतः आज के युग में यदि इस सिद्धांत को वैश्विक नीति और व्यक्तिगत जीवन में अपनाया जाए, तो यह मानवता को सतत विकास और पूर्ण स्वास्थ्य की दिशा में ले जा सकता है। योगी सभी प्राणियों में अपने को और अपने में सभी प्राणियों को देखता है।[1]

समसामयिक परिप्रेक्ष्य में योग की नीतियों की प्रासंगिकता –

वर्तमान युग – जिसे हम सूचना क्रांति, औद्योगिक विकास, शहरीकरण, और वैश्विक महामारी का युग कह सकते हैं – में जीवन अत्यधिक तीव्र, जटिल और मानसिक तनाव से ग्रसित हो गया है। जीवनशैली रोग, मानसिक व्याधियाँ, पर्यावरणीय असंतुलन, पारिवारिक विघटन और सामाजिक विषमता जैसी समस्याएँ आधुनिक मानवता को चुनौती दे रही हैं।ऐसे समय में योग की नीतियाँ – विशेषतः अष्टांग योग के यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि – अत्यंत प्रासंगिक, वैज्ञानिक एवं व्यवहारिक सिद्ध हो रही हैं। नीतियों का तात्पर्य केवल नैतिकता नहीं, बल्कि जीवन की समग्र दिशा एवं आत्म-शासन की प्रणाली से है जो योग के अनुशासन से ही पूर्ण हो सकती है। योग केवल प्राचीन दर्शन नहीं, बल्कि आधुनिक समाधान है। योग की नीतियाँ आज के युग में आत्मिक, मानसिक, सामाजिक और वैश्विक स्वास्थ्य की आवश्यकता बन चुकी हैं। यह नीतियाँ हमें भीतर से सशक्त बनाकर बाह्य परिवर्तनों से सामंजस्य स्थापित करने की शिक्षा देती हैं। अतः समसामयिक यथार्थ में योग की नीतियाँ अत्यंत प्रासंगिक, वैज्ञानिक, और मानवोचित भविष्य की आधारशिला हैं।

उपसंहार –

यह अवधारणा इस तथ्य को स्वीकार करती है कि मानव स्वास्थ्य, पशु स्वास्थ्य और पर्यावरणीय संतुलन एक-दूसरे से गहराई से जुड़े हुए हैं। यह विचार वैश्विक स्वास्थ्य संकट, महामारी, पर्यावरणीय असंतुलन और जीवनशैली संबंधी रोगों के समाधान के लिए एक समग्र दृष्टिकोण प्रस्तुत करता है।

वहीं योग, केवल एक व्यक्तिगत साधना नहीं, बल्कि वह सर्वभूतहित की ओर उन्मुख जीवन-प्रणाली है। योग में वर्णित यम, नियम, प्राणायाम, ध्यान आदि न केवल शरीर और मन को संतुलित करते हैं, बल्कि वे व्यक्ति को प्रकृति, समाज और समस्त जीवों के साथ सामंजस्य स्थापित करने की शिक्षा भी देते हैं।

योग की मूल भावना — "वसुधैव कुटुम्बकम्", "सर्वे भवन्तु सुखिनः", और पंचमहाभूत सिद्धांत — इस बात को पुष्ट करते हैं कि पृथ्वी पर सभी जीवन-रूपों का कल्याण एक-दूसरे से जुड़ा हुआ है। आज के युग में, जब मानवता जलवायु संकट, मानसिक विक्षोभ और स्वास्थ्य असमानता जैसी समस्याओं से जूझ रही है, तब योग एक वैज्ञानिक, सार्वभौमिक और व्यवहारिक समाधान के रूप में उभरता है। अतः "एक पृथ्वी, एक स्वास्थ्य" के वैश्विक लक्ष्य की प्राप्ति के लिए योग की अवधारणा केवल प्रासंगिक ही नहीं है, बल्कि अत्यंत आवश्यक भी है।

❑

[1] "सर्वभूतस्थमात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि" श्रीमद्भगवद्गीता ४.२९